प्रकाशक

अ० वा० सहस्रबुद्धे,

मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,

वर्धा (बम्बई राज्य)

पहली बार ५,०००

जुलाई, १९५७

मूल्य २५ नये पैसे (चार आना)

मुद्रक

प० पृथ्वीनाथ भार्गव,

भार्गव भूषण प्रेस,

गायघाट, वाराणसी

बहन की पुकार

पाठकों के लिए मैं एक स्नेहमयी भेंट लायी हूं। दादा की संगति मे एक बात ध्यान मे आयी। स्नेह का सामाजिक मूल्य कायम हो, स्नेह के सांस्कृतिक महत्त्व की ओर समाज का ध्यान आकर्षित हो, इसलिए दादा रात-दिन अथक परिश्रम करते आये हैं। पुराने मध्य-प्रदेश की विधानसभा में दादा पांच साल रहे। वहाँ भी उसीके लिए प्रयत्नशील रहे। स्त्री-जीवन मे जड़मूल से परिवर्तन हो, इसके लिए, क्या घर मे और क्या बाहर, दादा निरंतर लगन से प्रयत्न करते ही आये हैं। उस परिवर्तन का अधिष्ठान भी था भावरूप स्नेह ही! भूदानमूलक क्रांति के दादा अनन्य प्रवक्ता बने। इस क्रांति मे भी वे सख्य-प्रवण, बन्धुत्वमूलक अहिंसात्मक प्रक्रिया की महिमा गा रहे हैं।

समय-समय पर दादा से मेरी जो चर्चाएँ होती थीं, उनके कुछ महत्त्वपूर्ण अंश मैं टोकती चली गयी। उनके पत्रों से विचार-प्रवर्तक अंश संकलित करती गयी। सोचा, यह स्नेहपूर्ण भेंट सब भाइयों को प्रिय लगेगी।

मणिभवन,
लैबरनम रोड,
बम्बई ७

—विमला

अनुक्रम

घूमती है। परन्तु मानवीय व्यवहारों का चक्र स्नेह के अक्ष पर घूमता है। स्नेह से ही मानव-मानव के परस्पर सबधों का, आत्मभाव का एव आत्मभाव का प्रवर्तन होता है। अतएव स्नेहचक्र ही विश्व का एव विश्व-नियता का पवित्र तथा जीवन-विकासकारी सुदर्शन चक्र है।

स्नेही जनों के कृपा-प्रसाद से मेरे व्यक्तित्व में यह स्नेहचक्र गतिमान् हुआ। इसलिए इसमें जो-जो मगलकारक है, मधुर है और उन्नतिकारक है, वह सब तेरा है। तेरे जीवन में इस स्नेह का अक्षय्य माधुर्य, व्यापक सौहार्द एव सार्वत्रिक सख्यभक्ति के रूप में नित्य प्रकट होता रहे, यही तेरे दादा का आशीर्वाद है।

गया
७-९-'५५

दादा धर्माधिकारी

स्नेह-सूत्र

स्नेह के कार्य के लिए भूमिका का क्या प्रयोजन ? ज्ञान-विषय के लिए भूमिका आवश्यक होती है। परन्तु स्नेह को इतना विवेक रहे तब न !

स्नेह याने मराठी में जिसको 'जिव्हाळा' कहते हैं, वह। जिस कार्य में स्नेह नहीं याने 'जिव्हाळा' नहीं याने जिय की लगन नहीं, वह कार्य सहज ही निर्जीव बन जाता है।

स्नेह से ही सब गुणों को सजीवता प्राप्त होती है। गुणों को मणियों की उपमा दी जाय, तो स्नेह को सूत्री की उपमा सुशोभित कर सकती है। इसलिए गुण-गणना में स्नेह का समावेश न करना ही ठीक होगा।

गुण-मालिका में स्नेह को बिठाने से स्नेह का रूपांतर आस्तिकता में होता है और फिर यह आवश्यकता निर्माण हो जाती है कि किसीके भी लिए स्नेह न रखा जाय। गीता ने कहा ही है "यः सर्वत्र अनभिस्नेहः"।

परन्तु ज्ञानदेव ने उसका अद्भुत अर्थ किया। ज्ञानदेव ने कहा, अभिस्नेह याने पक्ष-द्वेशी। अनभिस्नेह याने जिसका सर्वत्र समान स्नेह है। अर्थात् ज्ञानदेव ने स्नेह को गुण-मालिका से उठाकर सूत्र-स्थान में रख दिया।

विश्व में जो विभिन्न आविर्भाव हैं, वे सारे एक ही मधुर मूर्ति के आविर्भाव हैं। जब तक उनमें से कुछ के प्रति अधिक आकर्षण और कुछ के प्रति कम आकर्षण—ऐसी अनुभूति है, तब तक स्नेह-सूत्र हाथ नहीं आया, ऐसा समझना चाहिए। अधिक-से-अधिक यह कहा जायगा कि स्नेह-गुण उपलब्ध हुआ—जो दूसरी दृष्टि से दोषरूप भी है।

संस्कृत भाषा में 'स्नेह' शब्द का अर्थ तेल भी है। तेल घर्षण को टालने का काम कर सकता है। परन्तु कभी-कभी ऐसा अनुभव आता है कि तेल का प्रयोग करने पर भी घर्षण टला नहीं। और कभी-कभी तो घर्षण बढ़ा हुआ भी दीखता है। उस समय समझना चाहिए कि तेल में कूड़ा-करकट मिला हुआ है।

चरखे को तेल देते ही उसकी आवाज कम होती है। स्नेह तो निःशब्द ही होगा। इसलिए यह भूमिका, जो बिना कारण लिखी गयी, समाप्त करने के सिवा कोई चारा नहीं।

कुजेंद्री (उत्कल)
२१-९-१९५५

विनोबा के आशीर्वाद

दादा का स्नेह-दर्शन

: १ :

क्रान्ति

क्रान्ति के लिए सिर्फ बुद्धि को आश्वस्त करना पर्याप्त नहीं है। हृदय प्रज्वलित होना चाहिए। वक्तृत्व में बुद्धि का समाधान करके हृदय प्रज्वलित करने का जादू चाहिए। जिस प्रकार क्रान्ति के लिए विचार आवश्यक है, उसी प्रकार अन्तःकरण की आर्तता चाहिए। व्यक्तित्व का उपादान जितना शुद्ध और तेजस्वी, वाणी में उतना ही जादू समायेगा।

: २ :

क्रान्ति और संक्रान्ति

कल मकरसंक्रान्ति! हरएक व्यवहार में सरलता तथा सुसूत्रता और मधुरता एवं सुंदरता किस प्रकार दाखिल हो सकेगी इसका चिंतन करने का शुभ दिवस। भूदान-यज्ञ की क्रान्ति तिल और गुड़ की प्रक्रिया की क्रान्ति है। इसीलिए उस प्रक्रिया में अनुद्वेगकरी वाणी एवं अविरोधी वृत्ति का महत्त्व है। हरएक छोटे-मोटे व्यवहार में लोगों के दिल न दुखाते हुए सच बोलने की और सचाई से बरतने की कला हासिल करनी चाहिए।

: ३ :

अहिंसात्मक क्रान्ति

मत्सर याने परोत्कर्षासहिष्णुता। मनुष्य को यह भान चुभता है कि दूसरा अपने से अधिक गुणवान् है, बलवान् है, धनवान् है; रूपवान् है, सत्तावान् या भाग्यवान् है। उसके मन में स्पर्धा उत्पन्न होती है। इस स्पर्धा का या अहमहमिका का जन्म मत्सर की कोख से होता है, इसलिए प्रतिस्पर्धा में शत्रुत्व निर्माण होता है। जो गरीबों के हिमायती हैं, उनके अन्तस्तल के किसी-न-किसी कोने में धनवानों के लिए इसी प्रकार का मत्सर छुपा रहता है। जब वह मत्सर सामुदायिक या वर्गव्यापी हो जाता है, तब उसमें गुण का आभास होने लगता है। व्यक्ति के विषय में स्वार्थ, चोरी और आक्रमणशीलता, ये दोष माने जाते हैं। लेकिन राष्ट्र के बारे में वे ही गुणीभूत बनते हैं। उसी तरह यह मत्सर वर्ग-द्वेष के सलोने नाम पर क्रांति-तत्त्व बनकर शान बघारता है। उसके कारण क्रांति में क्लेश और उग्रता आती है।

अहिंसात्मक प्रक्रिया में सार्वत्रिक सख्यभाव चाहिए। सभी सखा, कॉमरेड, साथी-सम्बन्धी। दूसरों के दुःख से हम दुःखी होते है। उनके सुख से हम सुखी होते हैं। जो भाग्यवान् या वैभवसम्पन्न है, उनके भाग्य या वैभव की ईर्ष्या नहीं होती। उनकी स्वार्थांधता तथा अन्यायप्रियता से दुःख होता है। परन्तु उनके दुर्गुण भी निज के ही मालूम होते है। इसीसे सख्यत्व के प्रतिकार में प्रतिपक्षी होता ही नहीं। मत्सर के लिए अवकाश रहता ही

नहीं। जो 'अशाश्वत संग्रह' करता है, वह अविवेकी है, ऐसा प्रत्यय आता है। उसका संग्रह भाररूप मालूम होता है। वहाँ मत्सर निर्माण हो तो कैसे ?

: ४ :

सख्ययोगी क्रान्ति

विनोबा का आन्दोलन माँ से अधिक प्रेममय है। चंद्रमा से अधिक शीतल है। जल से अधिक प्रवाहशील है। उसमें प्रेम का अदम्य उफान है। यही कारण है कि लोगों को उसमें जोश या आवेश के दर्शन नहीं होते। यह आन्दोलन सख्य-भावना का आन्दोलन है। इसमें प्रतिकार आयेगा, तो भी वह सख्य-भावना में से निष्पन्न होगा। न उसमें जय-पराजय रहेगा, न होगी उसमें स्वपक्ष और परपक्ष की भावना। आज तो सारा संयोजन युद्ध की भूमिका पर चलता है। अनाज की उपज बढ़ाने का काम तक युद्ध की भूमिका पर से चलता है। शान्ति और भाईचारे का संयोजन भी युद्ध की भूमिका पर आरूढ़ होकर चलेगा, तब उसमें लज्जत रहेगी।

विनोबा का आन्दोलन बिछुड़े भाइयों को एक-दूसरे के निकट लाने का आन्दोलन है। उसमें लड़ाई का जोश-खरोश कैसे आ सकता है। जिनको सख्यत्व में उत्साह और तेज का अनुभव नहीं आता, उनकी बुद्धि गतानुगतिकता की शिकार बन गयी है। विनोबा का आन्दोलन झोंपड़ी-झोंपड़ी में जलती हुई लकड़ी डाल-कर आग भड़कानेवाला आन्दोलन नहीं है। यह आन्दोलन अनगिनत ज्योतियाँ प्रज्वलित करेगा। हर झोंपड़ी में आलोक निर्माण

करेगा। सारे भुवन को ही आलोकित करनेवाला यह आन्दोलन है। लोग कहते हैं, इतने प्रचण्ड अन्धकार में ये नन्हीं-नन्हीं जाग्रत ज्योतियाँ कितना-सा प्रकाश दे सकेंगी? विनोबा कहते हैं, अमावास्या के कालकूटवत् घने काले अँधेरे में भी छोटे-से जुगनू का प्रकाश तिरोहित करने की सामर्थ्य नहीं है। यह आन्दोलन निर्द्वंद्व, नित्यसत्त्वस्थ, निर्योगक्षेम एवं आत्मवान् व्यक्तियों का है।

: ५ :

साधना और समाज-सेवा

जब साधना में मानव में ईश्वर देखने की सामर्थ्य निर्माण होती है, तब वह साधना सेवा में परिणत होती है। तब साधना से सेवा को अलग करना सभव नहीं रह जाता। यह भावना ही शेष नहीं रहती कि मैं सेवा कर रहा हूँ। अहता सेवा में पिघल जाती है। साधना व्यापक बनती है। उसको मानवव्यापी स्वरूप प्राप्त होता है। साधना और समाज-सेवा में कोई भेद नहीं बाकी रहता। यह फर्क ही नहीं बाकी रहता कि अमुक वस्तु आत्मसतोष के लिए है और फलानी चीज लोकाराधना के लिए है। यह भेद भी नहीं रह जाता कि साधना अलग है और उत्तरदायित्व अलग है, कर्तव्य अलग है और अधिकार अलग है। आत्मोद्धार और लोकसग्रह परस्पर में घुल-मिल जाते है।

: ६ :

जहाँ प्रेम, तहाँ नेम नहीं

प्रेम एक ईश्वरीय गुण है। वह दैवी सम्पत्ति का लक्षण है। ईश्वर के सान्निध्य में शिष्टाचार के नियम या मर्यादाओं का प्रयोजन ही नहीं रहता। हम जैसे हैं, वैसे ही नम्र भाव से उसके पास जाते हैं। जहाँ शुद्ध स्नेह होगा, वहाँ भी हमारी यही हालत होती है। वहाँ मर्यादा या विनय रखने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

: ७ :

मेरा स्नेह-पंथ

मेरे साथी तथा मार्गदर्शकों में से कुछ आत्मनिष्ठ हैं और कुछ सेवानिष्ठ हैं। जो आत्मनिष्ठ हैं, उनका लोकसंग्रह भी प्रायः आत्मनिष्ठ होता है। जो सेवानिष्ठ हैं, उनकी आत्मोन्नति की साधना भी अधिकतर लोकसंग्रहात्मक होती है। मैं आत्मनिष्ठ नहीं हूँ। सेवा का मुझे छंद नहीं है। मेरा अपना "मुरारेस्तृतीयः पन्थाः" है। मेरा पथ स्नेह-पंथ है।

: ८ :

स्नेह की शक्ति

स्नेह में चमत्कार की शक्ति है। अनुभवी लोगों का प्रत्यय है कि श्रद्धा से पर्वतों को हिलाया जा सकता है। निरपेक्ष स्नेह में श्रद्धा से कम शक्ति नहीं। उसमें प्रति-दान की या प्रति-मूल्य की अपेक्षा रहती नहीं, बल्कि प्रति-प्रेम की अपेक्षा भी शेष नहीं रहती।

: ९ :

मानवीय विग्रह

हम मर्त्यलोक के निवासी हैं। मृत्यु के कारण ही जीवन अमोल बनता है। मृत्यु के कारण ही जीवन में तेज तथा प्रभा है। पार्थिव देह भी मृत्यु के कारण ही इतना प्यारा और अनमोल मालूम होता है। वह नश्वर होगा, लेकिन नश्वरता उसकी पवित्रता, सुदरता या दिव्यता को घटाती नहीं।

शरीर की आसक्ति अलग है और शरीर की कद्र बिलकुल अलग। शरीर की इज्जत है, इसीलए तो दया-माया, करुणा, परोपकार और सेवा-शुश्रूषा इत्यादि पुण्यकर्मों के लिए अवसर है। परमात्मा का विग्रह कितना ही शुद्ध सत्त्वमय हो, विग्रह होने के कारण सान्त होता है। सान्त होने के कारण, क्या वह कम पवित्र होता है ?

. १० :

मूलभूत सत्प्रवृत्ति

मनुष्य दूर से जितने बुरे मालूम होते है, उतने बुरे वे निकट जाने पर दिखाई नहीं देते। क्योंकि हरएक के हृदय में दूसरे मुझको भला मानें, यह प्रवृत्ति छिपी होती है। इसलिए उसकी सब प्रवृत्तियों के भीतर, सब प्रवृत्तियों की तह में, सत्प्रवृत्ति अव्यक्त रूप से विद्यमान् रहती है। जब दूसरों के जीवन में छिपा यह सदेश नित्य अनुभव में आने लगता है, तब हमारी वृत्ति परिनिष्ठित बनती जाती है। मानवनिष्ठा बढती जाती है। अन्त में हमारे अन्त करण मे परमात्मा प्रकट होते हैं और अपने संकल्पों के द्वारा दैवी सकेत व्यक्त करते हैं।

: ११ :

स्नेह और भगवत्भक्ति

सब व्रत साधनों का हेतु है, 'चित्तशुद्धि'। जिस स्नेह में से और जिस संवाद में से चित्तशुद्धि में मदद होती होगी, वह स्नेह वैराग्यवत पावन माना जायगा। वह संवाद मौन व्रत के समान उन्नतिकारक माना जायगा। स्नेह भी एक व्रत है। संवाद प्रार्थना का ही एक अंग है। मानव के तथा समाज के रूप में परमात्मा की आराधना करनी चाहिए। अनंत रूप धारण करनेवाला वह विश्वात्मा भगवान् कभी नारायण के रूप में दिखाई देता है, तो कभी नर के और समाज के रूप में भी नजर आता है। विठ्ठ महार या श्रीखंड्या–चाकर थे, उसके अन्तिम अवतार नहीं। वह नटनागर नित्य नूतन रूपों का शृंगार धारण करता है। इसलिए कहता हूँ कि उदात्त स्नेह और भगवद् भक्ति में विरोध है ही नहीं।

: १२ :

स्नेह-रसायन

बौद्धिकता का घमंड और स्नेहशीलता के अभिमान का संयम करके लोक-जीवन में समरस होने का प्रयत्न करना चाहिए। स्नेह-रसायन ही ऐसा रसायन है, जिसमें अभिमान, संकीर्णता एवं अभिनिवेश आमूल धुल जाते हैं। इसलिए प्रेमरूप परमात्मा की उपासना करनी चाहिए।

: १३ :

स्नेह और साधना

स्नेह और साधना में भेद रहेगा, तो स्नेह का पर्यवसान मोह में होगा। साधना का पर्यवसान जुगुप्सा में होगा। गीता-रहस्य में दैवी सम्पत्ति के गुणों में विरोध कल्पा गया है। क्षमा और तेज का विरोध, सत्य और अहिंसा का विरोध, करुणा और शौर्य का विरोध; ऐसी विपरीत कल्पना की गयी है। तेजरहित क्षमा, अहिंसारहित सत्य, करुणारहित शौर्य, इन गुणों में क्या कोई अर्थ शेष रहेगा? स्नेहात्मक साधना और साधनामय स्नेह, इनमें क्या अंतर है, यह मेरी समझ में नहीं आता।

: १४ :

प्रेम की परिसमाप्ति

स्नेह के लिए सेवा का अवसर खोजना अनावश्यक है। साथ जीना स्नेह के लिए पर्याप्त है। एक-दूसरे के छोटे-मोटे काम करना सेवा नहीं कहलाता। वह मदद भी नहीं कहलाती। वह सिर्फ साथ जीने का आनंद है। प्रेम का प्रारंभ आत्मीयता से होता है और उसकी परिसमाप्ति तादात्म्य में होती है। "वह मैं हूँ" इस भावना में दूसरे को विषय या सम्पत्ति मानने की गुंजाइश नहीं है। वहाँ मालकियत की भावना को स्थान नहीं मिल सकता। इसलिए सच्चा स्नेह हमेशा शारीरिकता से ऊपर उठाता है।

: १५ :

ईश्वरनिष्ठा में से मानवनि

ईश्वरनिष्ठा और ब्रह्मचर्य की कोख में से मानवनि
होती है। जो मानवनिष्ठा ईश्वरनिष्ठा में से निष्पन्न होती है, उ
मानवनिष्ठा से मानव-प्रेम क्षितिजव्यापी बनता है। लेकिन वह मानव-निष्ठा आकाश के अनन्त अवकाश में तैरती हुई नहीं रहेगी। उसको पृथ्वी पर एक ठोस आलंबन आवश्यक होगा। व्यापक मानव-प्रेम याने शून्यों का बाजार नहीं। विशिष्ट का निषेध याने व्यापक की आराधना नहीं।

: १६ :

स्नेह का आलंबन

यह जरूरी नहीं कि दूर रहकर किया हुआ प्रेम गुणनिष्ठ होगा, तो वह आध्यात्मिक भी होगा। भावनात्मक प्रेम का आलंबन भी सूक्ष्म शरीर ही रहता है। आत्मा को लक्ष्य में रखकर जो प्रेम होता है, वह विशिष्ट हो ही नहीं सकता। दूर से प्रेम किया जाता हो, तो भी वह किसी-न-किसी व्यक्ति पर किया जाता है। अर्थात् वह विशिष्ट होता है। इसीलिए उसका आलंबन गुणात्मक और भावनात्मक सूक्ष्म शरीर होता है।

: १७ :

स्नेहार्थ सामाजिक तपस्या

हम आर्थिक स्वार्थ की जगह, स्नेह के पारमार्थिक अधिष्ठान पर नयी समाज-रचना खड़ी करना चाहते है न ? क्या वह स्नेह आसमान में रहेगा ? क्या वह मात्र भावनात्मक रहेगा ?

उस स्नेह के लिए कष्ट सहना, निरपेक्ष कष्ट सहना, यही सामाजिक तप है। तप के सिवा तत्त्वज्ञान परिपक्व नहीं होता। यदि स्नेह के लिए, मनुष्य मोहाधीन या विकाराधीन न होते हुए जागरण, भूख, शीतोष्ण और सुख-दुःख सहन करेगा, तो वह तप कहलायेगा। स्नेह का प्रत्यक्ष अनुष्ठान ही पवित्र तप है।

: १८ :

स्नेह-साधना

जो स्नेह स्पर्श से परिमित नहीं होना चाहता और जिसको शब्द की आवश्यकता नहीं है, उस स्नेह की महिमा मै कैसे जानूँ ? मनुष्य जब सामने आता है, तो उसकी मूर्ति में से स्नेह अभिव्यक्त होता है। वह मैं समझ सकता हूँ। उस व्यक्ति का व्यक्तित्व ही प्रेममय बना रहता है। उसके अस्तित्व में से प्रेम-रश्मियाँ फूट पड़ती हैं। परन्तु मेरी वृत्ति इतनी परिनिष्ठित नहीं, वह जरा मोटी है।

पारस-मणि लोहे पर रूठ सकती है, परन्तु लोहा रूठेगा, तो उसका सोने में रूपातर किस प्रकार हो सकेगा ? "अय. स्पर्शलग्न सपदि लभते हेमपदवीम्" इसलिए दोनों हाथ फैलाकर वह पारस-मणि को आलिंगन देने के लिए आतुर रहता है। "स्पर्शमणे

सुवर्णांकुरु मा मलिनं लोहं" ऐसी आर्त पुकार लोह करता रहता है। पारस-मणि का नाम स्पर्श-मणि है। परन्तु पारस में स्पर्श की आकांक्षा नहीं रहती। वह आकांक्षा लोह में रहती है।

: १९ :

प्रेम पराभूत होता ही नहीं

स्नेह को कभी हार माननी ही नहीं चाहिए। नम्रतापूर्वक वह अपनी भूमिका अदा करे। निर्मल और निरपेक्ष प्रेम पराभूत हरगिज नहीं होगा।

: २० :

इहलोक का अमृत

कहा जाता है कि लाड़-प्यार से लड़के बिगड़ते हैं! क्या प्रेम से कभी कोई बिगड़ सकता है? जिस प्रेम से मनुष्य बिगड़ते हैं, वह प्रेम नहीं हो सकता। वह होगी मदिरा। मदिरा का नशा चढ़ता है। प्रेम निर्मल और निरपेक्ष रहता है। उसके कारण मनुष्य कदापि न बिगड़ेंगे!

: २१ :

भावरूप और विधायक स्नेह

व्यापक स्नेह के आधार पर समाज की रचना होनी चाहिए। स्नेह का तत्त्व जितना व्यापक, उतना ही वह उत्कट होता है। व्यक्तिगत जीवन में वह आत्मीयता के और आस्था के रूप में प्रकट होता है। जिस प्रकार सत्य, अहिंसा और अपरिग्रहादि तत्त्व व्यक्तिगत आचरण में प्रकट होते हैं, उसी प्रकार स्नेह का भावरूप और विधायक तत्त्व भी व्यक्तिगत आचरण में प्रकट होता है।

: २२ :

निरुपाधिक स्नेह

निरुपाधिक स्नेह सदैव अचूक मार्गदर्शन करता है।

: २३ :

सहजीवन का अनुष्ठान

जब स्नेह साधना बनता है, तो जीवन को सहजीवन के पवित्र अनुष्ठान का स्वरूप प्राप्त होता है। यदि अकेले खाना चोरी है, तो अकेले जीना लोकवंचना है। साथ जीना सहजीवन का मंगल अनुष्ठान है। साथ मरना सहजीवन की परिणति है। साथ जीने में आनंद होगा, तो साथ मरने में कोई कम आनंद नहीं है। वह तो "सह नौ भुनक्तु" का ही एक पहलू है। जिस प्रकार केवल जिजीविषा क्षुद्र, उसी प्रकार केवल मुमूर्षा भी अधम होगी। जब दोनों को "सह" उपसर्ग प्राप्त होगा, तो दोनों उदात्त और उत्कृष्ट बनेंगी। सहमुमूर्षा से मृत्यु को सामाजिक मूल्य प्राप्त होता है। मृत्यु में से अमृत की ओर बढ़ने की यह एकमेव प्रक्रिया है।

: २४ :

स्नेह और संक्रान्ति

स्नेहशून्य साधना मानवीय मूल्य नहीं बन सकती। साधना-हीन स्नेह सांस्कृतिक मूल्य बन ही नहीं सकता।

: २५ :

स्नेह और सेवा

वैराग्य की परिणति आध्यात्मिकता में न होने पर वह वैराग्य किस प्रकार व्यक्तिवाद का, अलगाव का स्वरूप धारण करता है, इसका प्रत्यतर आश्रमों में रहे हुए अनेक व्यक्तियों के जीवन में देखने को मिलता है। उनके लिए इतरजन सेवा के साधन होते है या फिर उनकी अपनी साधना के जीवित उपकरण होते है।

इधर एक नमूना देखने में आया। एक व्यक्ति बीमार की सेवा करने आया। सेवा करते-करते अभिनिवेश निर्माण हुआ। बीमार को वह सेवा चुभने लगी। बीमार ऊब गया। सेवक से नफरत हुई। फिर भी उस व्यक्ति का सेवाग्रह जारी रहा।

स्नेह जीवन का तत्त्व है, सत्त्व है, उपादान है; सेवा नहीं। स्नेह की कोख में से सेवा उत्पन्न हो सकेगी। लेकिन यह जरूरी नहीं कि सेवा स्नेह की जननी ही हो। जिस सेवा की परिणति और परिसमाप्ति स्नेह में नहीं होती, वह सेवा सेवा ही नहीं।

: २६ :

आस्तिकता का लक्षण

आस्तिकता का सबसे बड़ा लक्षण है, दूसरों में स्नेहभाव और आत्मीयता जगाना।

: २७ :

कौटुंबिक स्नेह का विकास

जिस प्रकार हृदय-परिवर्तन, विचार-परिवर्तन, पदयात्रा और जनसपर्क, ये श्रेयस्कर साधन है, उसी प्रकार कौटुबिक स्नेह का विकास भी परम श्रेयस्कर साधन है। इस युग में परिवार टूट रहे है। भाईचारा घुल रहा है। इसलिए इस साधन का महत्त्व अन्य सब साधनों की अपेक्षा सौ गुना अधिक है। हमारी साधना का आधार-भूत तत्त्व ही कौटुबिकता का विकास है।

: २८ :

विश्व-कुटुम्ब की ओर

कौटुविक वृत्ति का परिपोष करना हमारा कर्तव्य है। समाज-स्वामित्व या ग्रामस्वामित्व प्रस्थापित करने की कल्पना तो कम्यून में भी है। लेकिन उसमें साझेदारी और सहपरिश्रम होने पर भी पारिवारिक भावना का परिपोष तथा विकास करने की योजना नहीं है। और जब तक वह योजना नहीं होगी, तब तक पारिवारिकता का सामाजिक मूल्य कायम नहीं होगा। और कुटुब-संस्था के पावित्र्य और सौंदर्य का सरक्षण नहीं हो सकेगा।

कुटुब का विस्तार ही कौटुविकता का सामाजिक मूल्य की दृष्टि से विकास। उसके लिए कुटुवियों के लिए जो उत्कट आत्मी-

यता तथा आस्था होती है, उसका जतन और विशिष्ट वंश और रक्त का जो अभिमान होता है, उसका त्याग—इस प्रकार का दोहरा प्रयत्न करना पड़ेगा। जहाँ रक्त या विवाहसंबंध नहीं है, वहाँ कौटुंबिक रिश्तों के स्वाभाविक एवं निर्व्याज स्नेह का विकास करना पडेगा। कुटुंबियों के विषय में जो आत्मीयता तथा आस्था होती है, वह इस वृत्ति के लिए पोषक साबित होगी। इस तरह हम कौटुंबिक मूल्य समाजव्यापी बना सकेंगे।

संस्था, संगठन और समितियाँ, फिर चाहे वे आध्यात्मिक हों या लौकिक, सर्वत्र यही नजर आता है कि अनुशासन और नियंत्रण संविधान पर या सत्ता पर आधारित है। कौटुंबिकता का सम्पूर्ण अभाव दिखाई देता है। जो समान ध्येय, समान साधना और समान जीवन-पद्धति (रहन-सहन) का बुद्धिपूर्वक स्वीकार करके स्वेच्छा से एकत्रित रहते हैं, उनकी यह हालत है। और हमारा संकल्प तो ग्राम-कुटुंब और उनके द्वारा विश्व-कुटुंब की प्राण-प्रतिष्ठा का है। इसलिए मैं कहता हूँ कि धर्मशाला, छात्रालय, हॉटेल्स और अतिथि-गृहों की अपेक्षा हममें कुटुंब-संस्था के लिए अधिक आस्था हो।

: २९ :

जीवनमय मुक्ति

लोगों से ऊबकर, हम परलोक-प्राप्ति की आशा किस बल पर रखें ? 'उत्तम-लोक' की प्राप्ति करने के लिए उत्तम 'लोगों' का सग्रह करने के सिवा दूसरी कला हमसे नहीं सधेगी। हमारी 'जीवन्मुक्ति' जीवन से मुक्ति नहीं, बल्कि जीवनमय मुक्ति। लोका-भिमुख वृत्ति से ही उसकी साधना होना सभव है। लेकिन यह लोकाभिमुखता या लोकपरायणता लोकैषणा नहीं है। इस लोक में जो सुख नहीं मिल सकता, वह सुख दूसरे लोक में प्राप्त करने की आकाक्षा लोकैषणा कहलाती है। इसी लोक में मान-सम्मान, गौरव या प्रतिष्ठा प्राप्त करने की आकाक्षा भी लोकैषणा ही है। लेकिन लोगों के लिए निरपेक्ष स्नेह और उस स्नेह के कारण उनकी सहायता के लिए तत्पर रहने की वृत्ति लोकैषणा नहीं है।

: ३० :

अनास्था और अनासक्ति

अनासक्ति याने अनास्था और तनखादारी याने किरायेदारी, ऐसे समीकरण लोगों की बुद्धि में दृढमूल हो गये हैं। लेकिन मेरा यह अनुभव है कि जैसे-जैसे मनुष्य अनासक्त बनता जाता है, वैसे-वैसे उसके कार्य में उत्कटता और दक्षता बढ़ती जाती है।

: ३१ :

सर्वोदयी विश्वविजय

भूदान-यज्ञ-आन्दोलन में पंथ नहीं है, ग्रंथ नहीं है, सम्प्रदाय भी नहीं है। भूदान-यज्ञ मानवमात्र के लिए निरुपाधिक विश्व-कुटुंब-वृत्ति की दीक्षा का एक दिव्य मंत्र है। यह 'दिग्विजय' सबको विजयी करनेवाला है। यहाँ किसीकी भी पराजय नहीं। सब दिशाओं को व्यापनेवाला और सबको विजय प्राप्त करानेवाला, इसीलिए यह सर्वोदयी विश्वविजय है।

: ३२ :

आवाहन का सौख्य

आज हमारी भूमिका विवेकयुक्त प्रतीक्षा की है। विवेकयुक्त प्रतीक्षा में अनास्था या निष्क्रियता नहीं होती। प्रतीक्षा में उत्कंठा रहती है। प्रतीक्ष्य का निरंतर ध्यास रहता है। जिस नवीन मानव का हम आवाहन करना चाहते हैं, उसका ध्यान एवं मनन अनायास होता है। उसके स्वागत की तैयारियाँ करनी पडती हैं। तैयारियाँ वर्तमान क्षण में करनी पड़ती हैं। वर्तमान क्षण याने अनादि-अनंत कालप्रवाह से बिछुडा हुआ अलग क्षण नहीं। वह तो अनंत काल का अविभाज्य घटक है। इसलिए सांस्कृतिक प्रचारक "पुनरपि पक्ष. पुनरपि मासः" में जीता है। वह वर्तमान क्षण में विचरता है और अनंत काल में विराजता है। अखंड क्रियाशीलता के कारण उसे विश्राम मिलता है और प्रतिक्षण उसे नूतन सजीव समाधान का प्रत्यय आता है।

अब तो एक ही तड़पन है

अब एक ही तडपन है। ईश्वर के दर्शन कैसे होंगे ? जिस परमात्मा का गुणगान भक्तों ने गाया है, जिसको ज्ञानियो ने देखा है, वही भगवान् मुझे चाहिए। देव-विरहित जीवन मै सह लूँगा, लेकिन मुझे नकली और कृत्रिम देव हरगिज नहीं चाहिए। उन्हें तो मै बाजार में देखता हूँ। कोर्ट-कचहरी में वे दीखते ही हैं। चोरों के तथा बटमारों के मदिरों में भी उनके दर्शन होते है। वे कोई पारमार्थिक मूल्यों की स्थापना करनेवाले अवतार नहीं हैं।

क्राति के बिना अध्यात्म अर्थशून्य होगा। आध्यात्मिक अन्त.-प्रत्यय चाहिए। तर्कनिष्ठ बौद्धिकता की अपेक्षा आज अन्त प्रबोध की अधिक आवश्यकता है।

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

(विनोबा)

	रु न. पैसे
गीता-प्रवचन	१-०
शिक्षण-विचार	१-५०
कार्यकर्ता-पाथेय	०-५०
त्रिवेणी	०-५०
विनोबा-प्रवचन (संकलन)	०-७५
साहित्यिकों से	०-५०
भूदान-गंगा (छह खण्डों में) प्रत्येक	१-५०
ज्ञानदेव-चिन्तनिका	०-७५
जनक्रान्ति की दिशा में	०-२५
भगवान् के दरबार में	०-१३
गाँव-गाँव में स्वराज्य	०-१३
सर्वोदय के आधार	०-२५
एक बनो और नेक बनो	०-१३
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	०-१३
व्यापारियों का आवाहन	०-१३
हिंसा का मुकाबला	०-१९
सुनार	०-१३
ग्रामदान	०-७५
[illegible]	०-१३

(धीरेन्द्र मजूमदार)

शासनमुक्त समाज की ओर	०-५०
नयी तालीम	०-५०
ग्रामराज	०-२५
आजादी का खतरा	०-५०

(श्रीकृष्णदास जाजू)

सम्पत्तिदान-यज्ञ	०-५०
व्यवहार-शुद्धि	०-३८
[illegible]	३-५०
[illegible]	१-५०

(जे० सी० कुमारप्पा)

	रु न. पैसे
गाँव-आन्दोलन क्यों?	२-५०
गांधी अर्थ-विचार	१-०
स्थायी समाज-व्यवस्था (भाग २ रा)	२-०
यूरोप गांधीवादी दृष्टि से	०-७५
वर्तमान आर्थिक परिस्थिति	१-५०
स्त्रियाँ और ग्रामोद्योग	०-२५
श्रम-मीमांसा और अन्य प्रबन्ध	०-७५
गांवों के सुधार की योजना	(प्रेस में)
सूत से बना पैसा	०-७५
राजस्व और हमारी दरिद्रता	२-५०

(दादा धर्माधिकारी)

सर्वोदय-दर्शन	३-०
मानवीय क्रान्ति	०-२५
साम्ययोग की राह पर	०-२५
क्रान्ति का अगला कदम	०-२५

(अन्य लेखक)

नक्षत्रों की छाया में	१-५०
भूदान-गंगोत्री	२-५०
भूदान-आरोहण	०-५०
श्रम-दान	०-२५
भूदान-यज्ञ क्या और क्यों?	१-०
नये अंकुर	०-२५
सफाई विज्ञान और कला	०-२५
सुन्दरपुर की पाठशाला	०-३५
[illegible]	०-५०
विनोबा के साथ	१-०
पावन प्रसंग	०-५०
[illegible]	०-३१

	रु न पैसे
सर्वोदय का इतिहास	०–२५
सर्वोदय-सयोजन	१– ०
गाधी राजनैतिक अध्ययन	०–५०
सामाजिक क्रान्ति और भूदान	०–३१
गाँव का गोकुल	०–२५
व्याज-बट्टा	०–२५
भूदान-दीपिका	०–१३
पूर्व-बुनियादी	०–५०
राजनीति से लोकनीति की ओर	०–५०
नवभारत	४– ०
सत्सग	०–५०
क्रान्ति की राह पर	१– ०
ताई की कहानियाँ	०–२५
आज का धर्म	०–५०
क्रान्ति की ओर	१– ०
सर्वोदय पद-यात्रा	१– ०

	रु न पैसे
आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन	१– ०
भूदान का लेखा (आँकडोमें)	०–२५
सत्याग्रही शक्ति	०–३१
सर्वोदय-भजनावलि	०–२५
क्रान्ति की पुकार	०–१९
सामूहिक पद-यात्रा	०–२५
साम्ययोग का रेखाचित्र	०–१३
राज्यव्यवस्था सर्वोदय-दृष्टि से	१–५०
भूमि-क्रान्ति की महानदी	०–७५
भूदान गगोत्री	२–५०
मजदूरो से	०–१३
सामूहिक प्रार्थना	०–१३
सन्त विनोबा की आनन्द-यात्रा	१–५०
ग्राम-स्वावलम्बन की ओर	०–२५
सबै भूमि गोपाल की (नाटक)	०–२५

[ENGLISH PUBLICATIONS]

	Rs. N P
The Economics of Peace	10–0
Swaraj-Shastra	1– 0
Progress of a Pilgrimage	3–50
Bhoodan as seen by the West	0–38
Bhoodan to Gramdan	0–38
Bhoodan-Yajna (Navajivan)	1–50
M K Gandhi	2– 0
Planning for Sarvodaya	1– 0
The Ideology of Charkha	1– 0

(J. C KUMARAPPA)

	Rs N P.
Why the Village Movement ?	3–50
Non-Violent Economy and World Peace	1– 0
Economy of Permanence	3– 0
Gandhian Economy and Other Essays	2– 0
Overall Plan for Rural Development	1–50
Swaraj for the Masses	1– 0
The Cow in our Economy	0–75